स्वतंत्राता आन्दोलन में मिथिला के दलितों तथा पिछड़ों का योगदान

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
के
इतिहास (सामाजिक विज्ञान संकाय)
में
पी–एच॰ डी॰ उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रारूप

शोध पर्यवेक्षक
(प्रो0 संजय झा)
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
एल0एन0एम0यू0, दरभंगा

शोधार्थी
विकास कुमार पटेल
वर्ग क्रमांक–33
विश्वविद्यालय क्रमांक–**E2210066**

शोध परियोजना प्रारूप

1. शोध शीर्षक :

स्वतंत्राता आन्दोलन में मिथिला के दलितों तथा पिछड़ों का योगदान

2. प्रस्तावना **(शोध के मुद्दे)** :

राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती भारत के विभिन्न सामाजिक संगठनों के अलग अलग स्वार्थों को एकीकृत कर औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संयुक्त आन्दोलन की ओर प्रवृत्त होने की थी। इस यूनिट में हमलोग उपनिवेशवाद के विरुद्ध दलितों का समर्थन प्राप्त करने के तारतम्य में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा दलितों के जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दे से संबंधित की गयी पहल पर विचार करेंगे। भारत में ब्रिटिश शासन के मद्देनजर जो प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन हुए उसने और विशेषकर दलितों के हित संरक्षण हेतु उठाये गये कदम ने दमनकारी जाति व्यवस्था के खिलाफ उनके अव्यक्त असंतोष को व्यक्त करने का अवसर प्रदान किया। दलित बुद्धिजीवियों ने प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर अपने सामाजिक समूह से जुड़े लोगों को अपने सामाजिक और राजनीतिक अधिकार का दावा प्रस्तुत करने के लिए लामबंद करने की कोशिश की। ब्रिटिश शासन से आजादी की अपेक्षा आंतरिक उत्पीड़न से आजादी दलित बुद्धिजीवियों का वांछित लक्ष्य था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने दलितों की पीड़ा को संबोधित करने की जरूरत को महसूस करते हुए अस्पृश्यता की समाप्ति और सामाजिक समानता तथा न्याय की वकालत की। राष्ट्रवादियों द्वारा दलित नेताओं के लोकतांत्रिक अधिकार की मांग को समर्थन देने की कवायद शुरू हुई। इस इकाई में आप ब्राह्मणवादी परंपरा के खिलाफ दलितों द्वारा प्रदत्त एक वैकल्पिक वैचारिक परंपरा के प्रयास से परिचित होंगे। आप यह भी जानेंगे कि दलित समाज की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवादी नेतृत्व ने किस तरह

के कदम उठाए और कैसे अंततः दलित नेतृत्व पूना समझौता के तहत पृथक निर्वाचन मंडल की अपनी मांग की जगह संयुक्त निर्वाचन मंडल को स्वीकार करने पर राजी हुआ। इस अध्याय में आप दलितों की स्वतंत्रता और सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में गाँधी और अंबेडकर के विचारों से अवगत होने के साथ ही साथ स्वाधीनता आंदोलन के प्रति दलित बुद्धिजीवियों के संदेह को जान पाएंगे।

भारत में दलित चाहे किसी भी प्रांत के हों जाति व्यवस्था के नाम पर वे दमन के विभिन्न रूपों के शिकार हुए। यह भी सही है कि जाति के नाम पर किए जाने वाले शोषण के खिलाफ समय समय पर लोगों ने अपनी आवाजें भी बुलन्द की। यहाँ पर बौद्ध धर्म, भक्ति आन्दोलन और अन्य जाति विरोधी समानाधिकारवादी आन्दोलन का उल्लेख कर सकते हैं। हालांकि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत के विभिन्न प्रांतों में दलितों द्वारा शुरू किए गये संगठित आन्दोलनों के भीतर से दलितों को प्रदत्त सामाजिक पहचान को चुनौती देने वाले स्वर के साथ साथ निर्णायक मंडल समिति में उनके अधिकार की मांग भी सुनाई देने लगी। 1857 की महान जनक्रांति ने औपनिवेशिक शासन की चूलें हिला दीं और ब्रिटिश नौकरशाही अत्यंत गंभीरतापूर्वक ऐसी रणनीति को तैयार करने में लग गई जिससे स्थानीय स्तर पर उभरने वाले किसी भी प्रकार के असंतोष, जो साम्राज्य के लिए खतरा बन सकते हों, को रोका जा सके। देशीय समाज की जटिलताओं का विश्लेषण करते हुए औपनिवेशिक सत्ता ने स्थानीय समाज में जाति अनुक्रम के आधार पर आंतरिक दमन शुरू करने का निर्णय लिया। सरकारी दस्तावेजों के माध्यम से जाति विभाजन की वैधता और पहचान के साथ साथ औपनिवेशिक सरकार ने सामाजिक रूप से शोषित समूहों के हित में कुछ विशिष्ट उपाए अपनाए। औपनिवेशिक शासन के इस दोस्ताना व्यवहार ने दलितों के बीच

अपनी शिकायतों को उजागर करने की इच्छा जागृत की और सरकार की सहायता से उन्होंने उच्च जाति की सत्ता को चुनौती देनी चाही। दलितों के हितों की रक्षा करने की औपनिवेशिक शासन की नीति और पश्चिमी शिक्षा से प्राप्त स्वतंत्रता, समानता और न्याय के उन मूल्यों ने न केवल दलितों को शिक्षित किया बल्कि उनके बीच एक नई चेतना को भी जन्म दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक–धार्मिक सुधारकों ने जाति व्यवस्था के नाम पर किए जाने वाले सामाजिक दमन के प्रति आगाह किया था लेकिन उनकी निंदा में कोई ऐसा क्रियात्मक एजेंडा नहीं दिखाई पड़ा जिससे दलितों के विश्वास को जीता जा सके। आरम्भिक राष्ट्रवादी और यहाँ तक कि उनके उत्तराधिकारी भी औपनिवेशिक शासन की दमनकारी नीति के प्रति पहले से ही चिंतित थे और उनका मुख्य लक्ष्य दलित मामलों को महत्व दिए बिना भारत की राजनीतिक आजादी के लिए भारतीय जनमानस को संगठित करना था। भारतीय राजनीतिक मुख्यधारा से अलग दलित महत्वाकांक्षा को महात्मा ज्योतिबा फुले (1827–1890), जिन्होंने आधुनिक भारत में सबसे पहले दलितों की आजादी के लिए आवाज उठाई थी, ने अपने लेखन में अभिव्यक्त किया। फूले आधुनिक भारत में जाति विरोधी आंदोलन के प्रथम विचारक माने जाते हैं। भारतीय इतिहास और पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या कर उन्होंने ब्राह्मणवाद के वैचारिक आधार को, जिसे वे उच्च जाति के आधिपत्य की बुनियाद मानते थे, को ध्वस्त करने की कोशिश की। जब तक जाति पदानुक्रम के आधार पर उत्पीड़न जारी रहेगा तब तक राष्ट्र निर्माण की तरफ कदम नहीं बढ़ाया जा सकता। अपनी पुस्तक गुलामगिरि (1873) में उन्होंने ब्राह्मणों को आर्य बताया जो बाहर से आये थे और जिन्होंने शूद्रों को, जो यहाँ के स्थानीय निवासी थे, अपना मातहत बना लिया और उनके जाति बहिष्कृत का ऐलान कर दिया। अपने लेखन और वक्तव्यों के माध्यम से फूले ने नए

इतिहास की निर्मिति की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने प्रतीकों और स्थानीय कहानियों का सहारा लिया और उनके माध्यम से दलितों को पूर्व में चित्रित धर्म शास्त्र और इतिहास पुराण परंपरा से अलग करते हुए उनके गौरवशाली स्थिति के बारे में बताया गया। इतिहास के संबंध में उनकी समझ को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि फूले प्रकृति से ही राष्ट्रवाद के आलोचक थे क्योंकि वे उसे ब्राह्मणवाद के प्रतिरूप की तरह ही मानते थे। उन्होंने स्पष्ट किया "एक राष्ट्र का नाम तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक कि राजा बाली की भूमि के सभी लोग–जैसे शूद्र और अति शूद्र, भील (जनजातियों) और मछुआरे आदि पूर्ण रूप से शिक्षित न हो जायें और अपने बारे में स्वतंत्र रूप से सोचने के साथ साथ एकरूपतः संगठित और भावनात्मक रूप से एकीकृत होने के योग्य न बन जायें। अगर 'राष्ट्रीय कांग्रेस' में कल के नवाब आर्य ब्राह्मणों की तरह जनसंख्या के बहुत कम लोग ही जुड़ेंगे तो कौन इसे गम्भीरता से लेगा?" फूले ने ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और तार्किक आधार पर अपने को उचित बताने वाली अन्य ब्राहमणीय व्यवस्था द्वारा सुधार हेतु की गयी पहल की बहुत भर्त्सना की। उन्होंने दृढ़ता पूर्वक अपने इस तर्क को प्रस्तुत किया कि बिना पीड़ित की मुक्ति के सुधार हेतु की गई पहल एक तरह उच्च वर्ग के आधिपत्य को ही अन्य तरीके से बनाये रखेगा। फूले 'बहुजन समाज', शूद्र और अति शूद्र, को संगठित करना चाहते थे। उन्होंने राष्ट्रवाद को उच्च वर्ग के एक ऐसी विचारधारा के रूप में देखा जिसके माध्यम से वे भारतीय समाज में व्याप्त आंतरिक विभाजन को महत्वहीन घोषित कर सकें।

औपनिवेशिक शाासन ने आरक्षण की व्यवस्था कर सामाजिक रूप से पीड़ित वर्ग के लिए शैक्षणिक और आर्थिक सुविधा के द्वार खोल दिये। पीड़ित वर्ग के छोटे से तबके ने इसका लाभ भी उठाया और सदियों से

उनका जो शोषण किया जा रहा था उससे वे अवगत हुए। जाति पदानुक्रम के नाम पर उनपर जो अक्षमता की बात थोपी गई थी उसके खिलाफ उन्होंने आवाज बुलन्द की और अपने मौजूदा हालात को चुनौती देने के लिए अपनी जाति के लोगों को इकट्ठा करना शुरू किया। यही कारण है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विभिन्न प्रांतों में जातिगत आधारित इतिहास लेखन और जाति संस्था की स्थापना में अचानक तेजी आई ताकि अपनी नई पहचान का दावा मजबूत करने के साथ साथ अपनी अपनी जातियों के सदस्यों के हितों को सुरक्षित किया जा सके। स्थानीय लोगों को विभिन्न सुधार अधिनियमों द्वारा शामिल कर प्रशासनिक बदलाव लाने के सरकारी पहल ने सामाजिक रूप से पीड़ित समूह को अपने राजनीतिक अधिकार, जिनसे वे अबतक वंचित थे, की मांग के लिए और भी प्रोत्साहित किया। महाराष्ट्र में फूले और अंबेडकर, तमिलनाडू में ई.वी. रामास्वामी नायकर और एम.सी. राजा, केरल में नारायण गुरु, आन्ध्र में भाग्य रेड्डी वर्मा, पंजाब में मंगू राम, उत्तर प्रदेश में अच्युतानंद, बंगाल में पंचानन वर्मा, रसिक लाल विश्वास, जोगेन मंडल और कई लोगों ने जाति आधारित भेदभाव और वर्चस्व को चुनौती दी और भारतीय समाज में आंतरिक उत्पीड़न की समाप्ति के बिना ही ऊँची जाति के कुलीन वर्ग द्वारा शुरू किये गये औपनिवेशिक विरोधी संघर्ष की निंदा की। दलितों में आई जागरुकता उस काल के दलित बुद्धिजीवी वर्ग के लेखन और गतिविधियों में मुखरित हुई। दलितों की मुक्ति और सशक्तिकरण दलित बुद्धिजीवियों के लिए मुख्य चिंता का विषय हो गये। ये ऐसे विषय थे जो कि मुख्यधारा के राजनीतिक नेताओं के तात्कालिक कार्यसूची में नहीं थे। उनके लिए तात्कालिक चिंता का विषय औपनिवेशिक शासन से राजनीतिक मुक्ति था।

3. पूर्व अध्ययन (साहित्यिक सर्वेक्षण) :

स्वतंत्रता आन्दोलन में मिथिला के पिछड़ों तथा दलितों की भूमिका तथा उससे जुड़े विषयों को विस्तृत रूप से जानने का प्रयास किया गया है। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में मिथिला के लोगों ने भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया है। मिथिला में खासकर दलितों तथा पिछड़ा वर्ग के लोगों ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में कंधा से कंधा मिलाकर हिस्सा लिया है। इसकी जानकारी हमें मिथिला पर लिखे गये विभिन्न पुस्तकों, शोध प्रबंधों तथा जिला गजेटियरों से प्राप्त होता है। सुरेश्वर झा की रचना स्वतंत्रता आन्दोलन में मिथिला का योगदान, बी. एन. सिंह की रचना मिथिला में स्वतंत्रता आन्दोलन का उद्भव और विकास, राम प्रकाश शर्मा का मिथिला का इतिहास, भोगेन्द्र झा की क्रांति योग, डॉ॰ संजय झा की पुस्तक भोगेन्द्र झा, उपेन्द्र ठाकुर की पुस्तक मिथिला का इतिहास से पड़ता है।

4. उद्देश्य महत्व एवं प्रासंगिकता :

स्वतंत्रता आन्दोलन ने मिथिला के दलितों तथा पिछड़ों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वर्तमान में इसे व्यापकता के आधार पर अध्ययन करने की आवश्यकता है। यह शोध प्रबंध एक छोटा सा प्रयास है। इसका महत्व एवं प्रासंगिकता वर्तमान समय में स्व का इतिहास जानने में काफी मददगार साबित होगा। यही इसका उद्देश्य, महत्व एवं प्रासंगिकता है।

5. ज्ञान के क्षेत्रा में योगदान :

इस शोध के माध्यम से स्वतंत्रता संघर्ष में मिथिला के दलितों तथा पिछड़ों की क्या भूमिका रही। समाज के निचले पायदान के लोगों ने भी स्वतंत्रता संघर्ष में उसी तरह बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया था। समाज में दोनों वर्गों के लोगों के बीच किसी तरह का भेदभाव नहीं था। देश के लिये अपनी प्राणों की आहुति देने में जिस तरह समाज के सभी वर्गों ने अपनी तत्परता दिखायी है। इतिहासकारों ने उनके साथ सही न्याय नहीं किया है। यह

शोध प्रबंध इतिहास को नये सिरे से देखने का प्रयास करेगा। यही इसका योगदान होगा।

6. अध्ययन क्षेत्रा :

स्वतंत्रता संघर्ष में मिथिला के दलितों तथा पिछड़ों की भूमिका में अध्ययन क्षेत्र मिथिला का क्षेत्र होगा। इसमें इस क्षेत्र में हुये राष्ट्रीय आन्दोलन के घटनाक्रमों का क्रमिक रूप से सूक्ष्म विश्लेषण किया जायेगा। यही इसका अध्ययन क्षेत्र है।

7. अध्ययन पद्वति :

राष्ट्रीय आन्दोलन में मिथिला के दलितों तथा पिछड़ों का योगदान में जो इसके विविध पक्षों को एक साथ देखने का जो प्रयास इस शोध के माध्यम से किया गया जा रहा है। यह निश्चित रूप से राष्ट्रीयता के विकास में अति महत्वपूर्ण तथा अनसुलझे पक्षों को उजागर करने का काम है। इससे लोगों के विभिन्न आन्दोलनों में भाग लेने, इससे विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी हमें अभिलेखागारीय एवं अन्य प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त होती है।

8. शोध सामग्री की उपलब्धता :

प्रस्तुत शोध के विषय सामग्री पर्याप्त मात्रा में हैं परन्तु बिखरे हुये हैं। इन्हें संकलित कर शोध हेतु सामग्री बनाने में विभिन्न संस्थाओं, ग्रंथों, पत्र–पत्रिकाओं को माध्यम बनाया गया है। बिहार राज्य अभिलेखागार पटना, जिला गजेटियर, पूर्णिया जिला पुस्तकालय, प्रधानमंत्री पुस्तकालय, नयी दिल्ली, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, दरभंगा में पर्याप्त मात्रा में रिकार्ड्स उपलब्ध है जिसका उपयोग शोध में होना सुनिश्चित है।

9. परिकल्पना (यदि कोई हो) :

यह शोध एक छोटी परन्तु एक महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी। इसमें राष्ट्रीय आंदोलन में मिथिला क्षेत्र में दलितों तथा पिछड़ों की भूमिका को विस्तार से चर्चा तथा इसका गहन विश्लेषण किया जायेगा।

10. कार्य योजना :

प्रस्तावित शोध कार्य को निम्नलिखित अध्यायों के अन्तर्गत सम्पन्न किया जायेगा–

प्रथम अध्याय –चम्पारण आन्दोलन तथा मिथिला

द्वितीय अध्याय–भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं मिथिला के दलित एवं पिछड़ा

तृतीय अध्याय –खिलाफत आंदोलन, असहयोग आंदोलन में मिथिला के दलित एवं पिछड़ा

चतुर्थ अध्याय –सविनय अवज्ञा आंदोलन में मिथिला के दलित एवं पिछड़ा

पंचम अध्याय –भारत छोड़ो आन्दोलन में मिथिला के दलित एवं पिछड़ा

षष्ठ अध्याय –मिथिला में पुलिस अत्याचार तथा दलित पिछड़ा सेनानी का जीवनवृत्त

सप्तम अध्याय –निष्कर्ष

संदर्भ ग्रंथ सूची

11. संदर्भ ग्रंथ सूची :

प्राथमिक स्रोत :

1. जयदेव झा लिखित पम्पलेट, मधुबनी।
2. पी.एस. 490/30, महात्मा गांधी प्रकाश, छपरा के रसूलपुर गाँव के पंडित राम छबील मिश्र द्वारा प्रकाशित।
3. पी.एस.के.डब्यू. 23/1930 लहेरियासराय में टमटम पर स्थापित गांधी की मूर्ति के पीछे 70 स्वयंसेवकों के जुलूस से संबंधित रिपोर्ट।

4. पी.एस. 357/1930, आजादी की हुंकार, संकलनकर्त्ता श्रीयुक्त प्रकाश।
5. पी.एस. 72/1930, 9 मई 1930 में सत्याग्रह के सिलसिले में एक ग्वाला जमींदार की गिरफ्तारी के बारे में कहा गया है।
6. सत्याग्रह आन्दोलन की गोपनीय रिपोर्ट, पुलिस अधीक्षक, चम्पारण।

द्वितीयक स्रोत :

1. झा, सुरेश्वर : स्वतंत्रता आंदोलन में मिथिला का योगदान, अंकिता प्रकाशन, बेतिया।
2. सिंह, डी. एन. : मिथिला में स्वतंत्रता आंदोलन का उद्भव और विकास, कल्याणी फाउंडेशन, दरभंगा।
3. शर्मा, राम प्रकाश : मिथिला का इतिहास, कामेश्वर सिंह, दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा।
4. झा, सीताराम : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की रूपरेखा, इमदाद प्रकाशन, दरभंगा।
5. सिंह, ब्रज किशोर : चम्पारण आन्दोलन, जानकी प्रकाशन, पटनए।
6. झा, संजय : मिथिला के विकास में भोगेन्द्र झा का योगदान, साहित्य भारती पब्लिशिंग हाउस, पटना।
7. झा, मुसाफिर : कांग्रेस संघटन में दरभंगा राज परिवार का योगदान, कल्याणी फाउंडेशन, दरभंगा।
8. नारायण, बलदेव : अगस्त क्रांति, बिहार अभिलेखागार, पटना।
9. दत्त, कालिंकिंकर : बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
10. घोष, पापिया : बिहार में सविनय अवज्ञा आन्दोलन, मानक पब्लिकेशन, दिल्ली।

पत्र–पत्रिकायें :

1. मिथिला भारती
2. इतिहास
3. इतिहास दर्पण
4. सामाजिकी
5. सबल्टर्न स्ट्डीज
6. तिरहुत

शोध पर्यवेक्षक	शोधार्थी का हस्ताक्षर
(प्रो0 संजय झा)	**(विकास कुमार पटेल)**
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग	विश्वविद्यालय क्रमांक–**E2210066**
एल0एन0एम0यू0, दरभंगा	